केशवानंद भारती निर्णय के 50 वर्ष

[illegible] 24/04/2023 [illegible] '[illegible]' [illegible] "[50 years of Kesavananda Bharati judgment]" [illegible] '[illegible]' [illegible]

संदर्भ

संविधान के '**मूल ढाँचे**' की अवधारणा का उद्भव 50 वर्ष पूर्व **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य** (1973) वाद के ऐतिहासिक निर्णय में हुआ था।

मूल ढाँचे का सिद्धांत एक अत्यधिक विवादास्पद बहुलवादी न्यायिक रचना है जिसे सरकार की सभी शाखाओं और भारत के नागरिकों द्वारा स्वीकार किया गया है।

केशवानंद भारती वाद ने असीमित संसदीय संप्रभुता पर अंकुश लगाया और संविधान की मूल पहचान को मान्यता देकर एक नया व्याख्यात्मक उद्यम शुरू किया, जिसे किसी भी संविधान संशोधन से नष्ट नहीं किया जा सकता है।

आज मूल ढाँचे का सिद्धांत संवैधानिक **न्यायिक समीक्षा** का एक लगातार विकास करता पहलू बन गया है।

क्या था केशवानंद भारती वाद?

- **केशवानंद भारती वाद (1973):**
    - इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने **गोलकनाथ वाद** में दिये गए अपने निर्णय के विरुद्ध निर्णय दिया। इसने 24वें संशोधन अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा और कहा कि संसद के पास किसी भी मूल अधिकार को कम करने या आहरित करने का अधिकार है ।
    - इसके साथ ही, इसने संविधान का 'मूल ढाँचा' या 'मूल विशेषताओं' का एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया।
    - इसने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संवैधानिक शक्ति इसे संविधान के 'मूल ढाँचे' में हस्तक्षेप करने या इसे बदलने में सक्षम नहीं बनाती है।
    - इसका अभिप्राय यह है कि संसद किसी ऐसे मूल अधिकार को कम नहीं कर सकती या आहरित नहीं कर सकती जो संविधान के 'मूल ढाँचे' का अंग है।

मूल ढाँचे के सिद्धांत की पृष्ठभूमि में प्रमुख वाद

- **शंकरी प्रसाद निर्णय 1951:**
    - आरंभ में न्यायपालिका का विचार था कि संसद की संविधान संशोधन शक्ति अप्रतिबंधित है क्योंकि यह संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, यहाँ तक कि यह अनुच्छेद 368 में भी संशोधन कर सकती है जो वस्तुतः संसद को संशोधनकारी शक्ति प्रदान करता है।
- **गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य 1967:**
    - सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की शक्तियों के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाया कि वह संविधान के भाग III, अर्थात् मूल अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती और इस प्रकार मूल अधिकारों को एक 'उत्तमोत्तम स्थिति' (Transcendental Position) प्रदान की।
- **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य 1973:**
    - इसमें एक ऐतिहासिक निर्णय दिया कि संसद संविधान के मूल ढाँचे में बदलाव या हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।
    - यह माना गया कि यद्यपि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की अबाधित शक्ति है, लेकिन यह संविधान के मूल ढाँचे या मौलिक विशेषताओं के साथ छेड़छाड़ या उसे कमज़ोर नहीं कर सकती है क्योंकि इसमें केवल संविधान संशोधन की शक्ति निहित है, न कि संविधान के पुनर्लेखन करने की।
- **इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण वाद:**
    - इस वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधिनियम (1975) के एक उपबंध को अमान्य कर दिया, जिसमें प्रधानमंत्री और लोकसभा

अध्यक्ष से संबद्ध निर्वाचन संबंधी विवादों को सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया था।
  - न्यायालय के अनुसार, यह उपबंध संसद की संशोधन शक्ति से परे था क्योंकि यह संविधान के मूल ढाँचे को प्रभावित करता था।
- **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ:**
  - मिनर्वा मिल्स वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि ''भारतीय संविधान की स्थापना मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों के बीच संतुलन के आधार पर की गई है।''
  - संसद निदेशक सिद्धांतों को लागू करने के लिये मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है, यदि यह संशोधन संविधान के मूल ढाँचे को आघात न पहुँचाता हो या उसे नष्ट नहीं करता हो।

मूल ढाँचे का सिद्धांत क्या है?

- केशवानंद भारती वाद में संविधान पीठ ने 7-6 के मत से निर्णय दिया कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है यदि वह संविधान के मूल ढाँचे या आवश्यक विशेषताओं में कोई बदलाव या संशोधन को अधिभावी न करे।
- हालाँकि, न्यायालय ने 'मूल ढाँचे' पद को परिभाषित नहीं किया और केवल कुछ सिद्धांतों - जैसे संघवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र आदि - को इसके अंग के रूप में सूचीबद्ध किया।
- तब से "मूल ढाँचे के सिद्धांत" को निम्नलिखित विषयों को संलग्न करने हेतु व्याख्यायित किया गया है -
  - संविधान की सर्वोच्चता,
  - विधि का शासन,
  - न्यायपालिका की स्वतंत्रता,
  - शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत,
  - संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य,
  - सरकार की संसदीय प्रणाली,
  - स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन का सिद्धांत,
  - कल्याणकारी राज्य, आदि।
- एस.आर. बोम्मई वाद (1994) मूल ढाँचे के अनुप्रयोग का एक प्रमुख उदाहरण है।
  - इस वाद में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद राष्ट्रपति द्वारा भाजपा सरकारों की बर्खास्तगी को न्यायालय ने उचित ठहराया, जहाँ इन सरकारों से धर्मनिरपेक्षता के लिये खतरे की बात कही गई।

मूल ढाँचे के सिद्धांत का महत्त्व क्या है?

- **राजनीतिक शक्ति को सीमित करना:**
  - गोलक नाथ वाद (1967) ने अनुच्छेद 368 की संशोधन शक्ति को मूल अधिकारों की व्यवस्था के अधीन लाकर राजनीतिक शक्ति की सीमा निर्धारित की।
  - मूल ढाँचे ने संविधान की मूल पहचान को चिह्नित किया, जिसे किसी भी संशोधन द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता है।
  - मूल ढाँचा संविधान के निरसन को अक्षम बनाता है और यह किसी संवैधानिक संशोधन को अधिकृत करती है, न कि संवैधानिक तोड़-मरोड़ या विघटन को।
- **न्यायिक समीक्षा प्रक्रिया और शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग:**
  - केशवानंद भारती वाद का उभार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सह-संविधायी शक्ति (Co-constituent Power) के विवेकपूर्ण प्रयोग के एक अवसर के रूप में हुआ।
  - इसने कार्यपालिका एवं विधायिका की वृहत पूर्ण शक्तियों को स्पष्ट किया और भय के तर्क को इस मान्यता के साथ खारिज कर दिया कि शक्ति के दुरुपयोग की संभावना इसकी अप्रदत्तता (Non-conferment) के लिये कोई आधार नहीं है।
- **अंतिम निर्णय का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय के पास:**
  - न्यायालय मानता है कि मूल सिद्धांतों की पहचान करना और उन्हें बनाए रखना उसका उत्तरदायित्व है, जो संविधान की अखंडता को बनाए रखने के लिये महत्त्वपूर्ण है।
  - NJAC वाद (2015) में दिया गया निर्णय यह स्पष्ट करता है कि शक्ति का प्रयोग केवल ''विधि के मापदंडों के भीतर, न तो अधिक और न ही कम'' किया जा सकता है और संशोधनों की वैधता ''विचारों के आधार पर परीक्षित नहीं की जा सकती है, वे कितनी भी प्रबलता या विशद रूप से अभिव्यक्त हुए हों।''
  - न्यायिक स्वतंत्रता विधि के शासन के 'सार' (Essence) के रूप में महत्त्वपूर्ण है, जो 'निर्णयात्मक स्वायत्तता' और 'संस्थागत स्वायत्तता' दोनों को शामिल करती है।
- संवैधानिक परंपराएँ और अभ्यास:
  - विधि के शासन का अर्थ है कि ''निर्णयन और विवेक के मानदंड'' हमेशा संविधान द्वारा परिचालित रहते हैं और 'संवैधानिक परंपराओं' के लिये सम्मान की मांग रखते हैं।
  - भारत के मुख्य न्यायाधीश के अनुसार न्यायिक नियुक्तियों के मामलों में एक परंपरा भारत सरकार अधिनियम, 1935 के समय से ही मौजूद

है।
    - 'संवैधानकि परंपराएँ और अभ्यास' लखिति शब्द के साथ अलखिति संवधािन के प्रतच्छिेदन को चह्निति करते हैं।

संबद्ध मुद्दे

- **स्पष्ट उपबंध नहीं:**
    - मूल ढाँचे के सद्धिांत का सबसे सामान्य मुद्दा यह है क संविधान की भाषा में इस सद्धिांत के लयि कोई आधार नहीं है।
    - ऐसे कसिी उपबंध का अभाव है जो यह नरि्धारति कर सकता हो क संविधान में संशोधन शक्त की क्षमता से परे कोई मूल ढाँचा मौजूद है।
- **शक्त पृथक्करण के सद्धिांत के वरि‌ुद्ध:**
    - यह सद्धिांत एक त्रपिक्षीय प्रणाली की कल्पना करता है जहाँ शक्तयों को उनके अधकिार क्षेत्र को रेखांकति करते हुए सरकार के तीन अंगों के बीच प्रत्यायोजति एवं वतिरति कयि जाता है।
    - यह शक्त के पृथक्करण की अवधारणा के साथ असंगत है।
- **वषिय-वस्तुगतता या 'सब्जेक्टवि मैटर':**
    - यह देखा गया है क मूल ढाँचे के सद्धिांत को अलग-अलग न्यायाधीशों द्वारा उनकी व्यक्तपिरक संतुष्ट के आधार पर अलग-अलग तरीके से परभिाषति कयि जाता है।
    - यह संवैधानकि संशोधनों की वैधता या अमान्यता को तय करने के नरि्णय को न्यायाधीशों की व्यक्तगित प्राथमकिताओं से प्रभावति करता है जो तत्समय संवधािन में संशोधन करने की शक्त प्राप्त कर लेते हैं।
- **नरि्वाचति संसद की शक्तयों पर सीमाओं का आरोपण:**
    - संसद द्वारा अधनियिमति कानून को न्यायालयों द्वारा अमान्य घोषति कयि जा सकता है यद न्यायालय इसे संवधािन के मूल ढाँचे के वरिुद्ध मान लें।
    - इस प्रकार, यह न्यायपालकिा को लोकतांत्रकि तरीके से गठति सरकार पर अपना दर्शन थोपने की अनुमत प्रदान करता है।
- **कोई स्पष्ट परभिाषा नहीं:**
    - मूल ढाँचा के संघटक तत्व के बारे में नश्चिति स्पष्टीकरण की कमी है, जससि यह सद्धिांत संदग्धि या अस्पष्ट हो जाता है।
    - यह तय करना न्यायालयों के ऊपर है क मूल ढाँचा क्या है?
- **न्यायकि अतरिक की ओर:**
    - राष्ट्रीय न्यायकि नयिुक्त आयोग (NJAC) को सर्वसम्मत से संसद द्वारा संवधािन में संशोधन के रूप में अधनियिमति कयि गया था और भारत के 28 में से 20 राज्यों की वधायिकि द्वारा इसे पारति कयि गया था।
    - NJAC वधियक एवं ऐसे कई अन्य मामलों में न्यायालय द्वारा मूल ढाँचे के सद्धिांत के आधार पर हस्तक्षेप कयि गया जन्हिें न्यायकि अतरिक (Judicial Overreach) की घटनाओं के रूप में देखा गया है।

नष्किर्ष

- मूल ढाँचे के सद्धिांत भारतीय संवधािन की आधारशलिा है, जो लोकतंत्र के मौलकि सद्धिांतों के संरक्षण और नागरकिों के अधकिारों की रक्षा सुनश्चिति करने में सहायक रहा है। केशवानंद भारती वाद में इसकी प्रस्थापना भारत के लोकतांत्रकि संस्थानों की सशक्तता और प्रत्यास्थता तथा संवधािन को बनाए रखने हेतु न्यायपालकिा की प्रतबिद्धता का एक वसीयतनामा है।

//

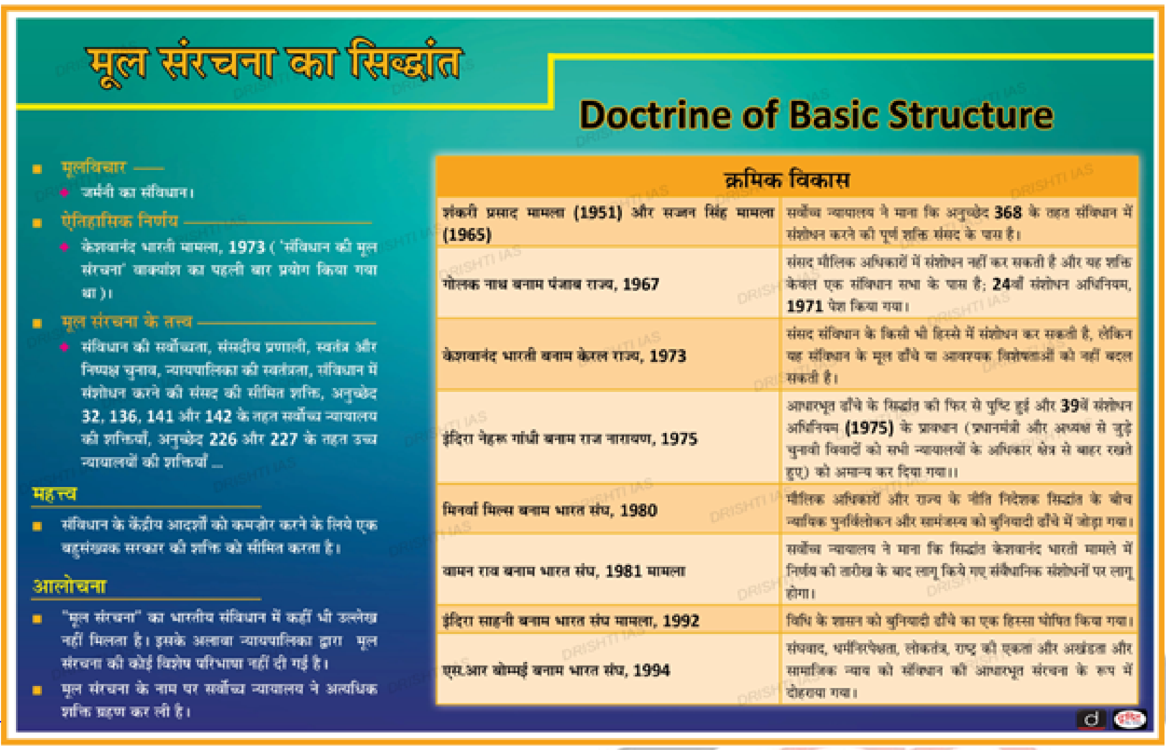

अभ्यास प्रश्न: भारत के संवैधानिक न्यायशास्त्र में मूल ढाँचे के सिद्धांत के महत्त्व और विकास की चर्चा करें। इसने शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा विधि के शासन को बनाए रखने में न्यायपालिका की भूमिका को कैसे प्रभावित किया है?

UPSC सिविल सेवा परीक्षा विगत वर्ष के प्रश्न (PYQ)

[illegible]

प्रश्न: निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:

1. भारत के संविधान के 44वें संशोधन द्वारा लाए गए एक अनुच्छेद ने प्रधानमंत्री के निर्वाचन को न्यायिक पुनर्विलोकन के परे कर दिया।
2. भारत के संविधान के 99वें संशोधन को भारत के उच्चतम न्यायालय ने अभिखंडित कर दिया क्योंकि यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता था।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) 1 और 2 दोनों

(d) न तो 1, न ही 2

उत्तर: (b)

[illegible]

प्र. "संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति एक परिसीमित शक्ति है और इसे आत्यंतिक शक्ति के रूप में विस्तृत नहीं किया जा सकता है।" इस कथन के आलोक में व्याख्या कीजिये कि क्या संसद संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत अपनी शक्ति का विशदीकरण करके संविधान के मूल ढाँचे को नष्ट कर सकती है? **(2019)**

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/50-years-of-kesavananda-bharati-judgment